3

हम यीशु के विषय में कैसे जान सकते हैं? (2)

मूर्तिपूजक और यहूदी स्रोतों से यीशु के विषय में अधिक जानकारी न होने के कारण, उसके बारे में हम जो कुछ जान सकते हैं, उसमें से अधिकतर नये नियम की मत्ती, मरकुस, लूका और यूहन्ना द्वारा लिखित सुसमाचार की पुस्तकों में से मिलता है। चारों लेखकों ने यीशु की विशेष तस्वीर प्रस्तुत की है, जो हमें यह जानकारी देती है कि वह कौन था और उसने क्या किया, बल्कि उसके महत्व की व्याख्या भी देते हैं और उसका वर्णन कई प्रकार से करते हैं। यकीनन इसी कारण हमें एक विवरण न देकर चार विवरण दिए गए हैं और इसी लिए वे अलग हैं।

सुसमाचार की पुस्तकों से हम क्या जान सकते हैं?

मत्ती

मत्ती रचित सुसमाचार मुख्यतया यहूदी श्रोताओं के लिए यीशु को इस्राएल के शाही मसीहा के रूप में प्रस्तुत करने के लिए लिखा गया था। मत्ती ने यीशु को दाऊद का वंश साबित करते हुए अपनी पुस्तक का आरम्भ उसकी ब्यालीस पीढ़ियों वाली वंशावली देते हुए किया। यह आवश्यक था क्योंकि मसीहा के दाऊद का ''पुत्र'' या उसकी संतान होने की उम्मीद भी। लेखक ने बार-बार पुराने नियम के वचनों की भी बात की, जिन्हें उसने यीशु द्वारा ''पूरा किए'' जाने को दिखाया। यह पुस्तक यीशु को ''नये मूसा'' जैसा दिखाती है, जो इस्राएल का महान व्यवस्था देने वाला और शिक्षक था।

मसीह की पुस्तक में पांच मुख्य भाषण (अध्याय 5-7; 10; 13; 18; 25-25) हैं। जिन्हें विवरणात्मक भागों के साथ अलग-अलग किया गया है। इन भाषणों में मसीह के वृत्तांत वाली यीशु की अधिकतर शिक्षाएं हैं। विद्वान लोग उन में ''मूसा की पांच पुस्तकों'' (पंच ग्रंथ: उत्पत्ति, निर्गमन, लैव्यव्यवस्था, गिनती और व्यवस्थाविवरण) की सांकेतिक प्रतिनिधित्व देखते हैं, जिसके साथ पुराना नियम आरम्भ होता है। जिस प्रकार परमेश्वर के हाथ से व्यवस्था पाने के लिए मूसा सीनै पहाड़ पर गया था, वैसे ही अपना पहाड़ी उपदेश देने के लिए यीशु पहाड़ पर गया (अध्याय 5-7), जिसमें अधिकतर समग्री मूसा की व्यवस्था से सम्बन्धित[1] थी। मत्ती के यहूदी पाठक उस बात को जिसे उसने लिखा था, अपने साथ मिलाते होंगे।

मरकुस

दूसरी ओर मत्ती का वृत्तांत स्पष्टतया अधिकतर अन्य जातियों, गैर यहूदियों के लिए था। मत्ती के लिए यहूदी शब्दों के इस्तेमाल या यहूदी रीतियों की बात करने पर उसे यह मानते हुए कि उसके पाठकों को समझ नहीं होगी कि वह किसकी बात कर रहा है, उसने उनकी परिभाषा दी

या उन्हें खोलकर समझाया (उदाहरण के लिए देखें मरकुस 7:1-4, 11)। रोमी लोग विशेषकर शक्ति से प्रभावित होते थे, इस कारण मत्ती ने यीशु को परमेश्वर का सामर्थी, आश्चर्यकर्म करने वाले पुत्र के रूप में दिखाया। उसने उसे सुसमाचार की अपनी वृत्तांत की पहली आयत में ''परमेश्वर का पुत्र'' कहा। वृत्तांत के अन्त में उसने लिखा कि क्रूस पर देने वाले सूबेदार ने कहा ''सचमुच यह मनुष्य परमेश्वर का पुत्र था!'' (मरकुस 15:39)। इस दौरान होने वाली कोई भी बात इसी बात को कहने के लिए तैयार की गई थी।

जहां मत्ती ने मसीह की शिक्षा के महत्वपूर्ण भागों को दिखाया है, वहीं मरकुस ने सत्रह आश्चर्यकर्मों और केवल चार दृष्टांतों को दर्ज करते हुए उसके कामों पर ध्यान केन्द्रित रखा। इसी बल को ध्यान में रखते हुए, मरकुस ने कई अवसरों को दर्ज़ किया जिनमें यीशु ने दुष्टात्माओं को निकाला; पहला आश्चर्यकर्म जिसे उसने दर्ज़ किया, वह ऐसा ही था (मरकुस 1:23-26)। सुसमाचार की अपनी पुस्तक के काम के बोध को ऊंचा करने के लिए *euthus* शब्द का इस्तेमाल चालीस से अधिक बार किया गया है। इसका अनुवाद आम तौर पर ''तुरन्त'' होता है; परन्तु कई संदर्भों में इसका बेहतर अनुवाद ''सभी'' (या ''सीधे''; KJV) हुआ है। परन्तु इस्तेमाल हुए यूनानी शब्द से स्पष्ट रूप से यह सारे शरीर शब्द है, जो सामर्थपूर्ण काम करने वाले के रूप में यीशु पर दिए जाने वाले मरकुस के बल को प्रकाशमान करता है।

लूका

लूका की पुस्तक सुसमाचार का एकमात्र वृत्तांत है, जिसे अन्यजाति ने लिखा। यानी लूका नये नियम की किसी पुस्तक का एकमात्र गैर यहूदी लेखक था। उसने यह दिखाने के लिए लिखा कि यीशु यहूदियों और अन्यजातियों दोनों तथा विशेषकर उनके लिए, जो समाज के हाशिए पर हैं, यानी सारी मनुष्यजाति के लिए ''शुभसमाचार'' (इस शब्द का अर्थ ''सुसमाचार'' है)। ऐसा करने के लिए उसने यीशु को उन लोगों की चंगाई और उद्धार के लिए दिए जाने को दिखाया जो यहूदी समाज में सबसे छोटे थे जैसे निर्धन, कोढ़ी, चुंगी लेने वाले, स्त्रियां और यहां तक कि सामरी लोग, जिन्हें उनके अपने यहूदी समकालीन सबसे तुच्छ मानते थे। सुसमाचार के लेखकों में लूका ने विशेष ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में यीशु को रखने का सबसे अधिक प्रयास किया (यद्यपि उनमें से किसी ने उसके जीवन के इस पहलू की उपेक्षा नहीं की)। उदाहरण के लिए लूका की प्रस्तावना (लूका 1:1-4) में दिखाया गया था कि लेखक ने यीशु के अन्य लोगों द्वारा लिखे यीशु के वृत्तांतों को पढ़कर और प्रत्यक्षदर्शियों से पूछ-पूछकर लिखा था (जो उसने स्वयं होने का दावा नहीं किया)। लूका 3:1, 2 यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले (और इस कारण यीशु) के लोगों में सामने आने और सेवकाई के समय की ओर ध्यान दिलाने के लिए था। प्राचीन शब्दों में यह यीशु की गतिविधि की स्पष्ट तिथि निर्धारित है। केवल लूका ही सुसमाचार की पुस्तक का एकमात्र लेखक है जिसने एक रोमी सम्राट का नाम दिया है। उसने सुसमाचार के अन्य वृत्तांतों द्वारा यीशु के जीवन की बातों को नज़रअन्दाज़ किए जाने वाले भाग का भी कुछ विवरण दिया है जैसे ''भ्रमण का विवरण'' (अध्याय 9-19), जिसमें क्रूस पर दिए जाने के लिए अन्तिम बार गलील से निकलने और यरूशलेम के लिए जाने का विवरण है। लूका के लिए स्वाभाविक रूप में यह भाग उसकी शिक्षाओं और उसके कामों अर्थात सामर्थ या रुतबे के बिना लोगों पर ध्यान जारी रखा।

मत्ती, मरकुस और लूका को सामूहिक रूप में ''सहदर्शी सुसमाचार (या सिनोप्टिक गॉस्पल)'' कहा जाता है। उन्हें उसे इसलिए कहा जाता है कि यीशु की कहानी बताने के लिए उसी मूल रूपरेखा को लिया गया है। ''सिनोप्टिक'' या सहदर्शी शब्द दो यूनानी शब्दों के मेल से बना है जिसका अर्थ है ''एक जैसा देखना।''

यूहन्ना

यूहन्ना रचित सुसमाचार यीशु को परमेश्वर के ईश्वरीय ''वचन'' (*Logos*) के रूप में प्रस्तुत करने के लिए लिखा गया था (यूहन्ना 1:1), इस अकेले वचन के द्वारा परमेश्वर ने अपने वास्तविक स्वभाव और इच्छा को प्रकट किया है। यह सहदर्शी वृत्तांतों के जितना तो यीशु के कामों के बारे में नहीं बताता (उदाहरण के लिए इसमें यीशु के दुष्टात्माओं को निकालने का कोई विवरण नहीं है), परन्तु इसमें स्वयं यीशु के भाषणों को उद्धृत करते हुए यह बताने की अधिक कोशिश की गई है कि यीशु कौन था। सुसमाचार के सहदर्शी वृत्तांतों के विपरीत यूहन्ना का वृत्तांत कालक्रम के अनुसार होने के बजाय विषय अनुसार बनाया गया है; सो कई बार मत्ती, मरकुस और लूका में पाई जाने वाली सामग्री के साथ इसे मिलाना कठिन हो जाता है। यूहन्ना का उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट है कि पाठक को मसीह में विश्वास दिलाना और सुसमाचार का केवल यही वृत्तांत है, जो पाठक के साथ सीधे मध्यम-पुरुष ''तुम'' के साथ बात करता है:

> यीशु ने और भी बहुत चिह्न चेलों के सामने दिखाए, जो इस पुस्तक में लिखे नहीं गए। परन्तु ये इसलिए लिखे गए हैं, कि तुम विश्वास करो, कि यीशु परमेश्वर का पुत्र है: और विश्वास करके उसके नाम से जीवन पाओ (यूहन्ना 20:30, 31)।

यूहन्ना की एक और विशेष बात, यीशु का परिचय बताने में पुस्तक की स्पष्टवादिता है। सुसमाचार सहदर्शी वृत्तांतों के विपरीत जो यीशु को आम तौर पर जाना जाने वाला होने से उसके मसीहा होने की बात को दूर रखने के लिए यीशु को दृढ़ संकल्प बनाते लगते हैं, यूहन्ना साफ़ कहता है कि यीशु ने मसीहा होने की बात की। सम्भवतया यही कारण है कि यूहन्ना में दर्ज अधिकतर काम यरूशलेम में या उसके आस-पास हुआ, जहां यीशु का यहूदी मत के अगुओं के साथ झगड़ा हुआ। सुसमाचार के अन्य तीनों वृत्तांतों में अधिकतर गतिविधियां गलील में केन्द्रित रहीं, जहां यीशु को मसीहा के रूप में उसकी भूमिका को गलत समझने वाले लोगों के द्वारा ''मसीहा से जुड़ा झगड़ा'' आरम्भ करने से बचना आवश्यक था।

सुसमाचार के चारों वृत्तांतों का उद्देश्य ''यीशु का जीवन'' का पूर्णविवरण देना नहीं था। यह स्पष्ट है क्योंकि सभी लेखकों ने यीशु के जीवन की बातों सें दूरी ही रखी। आधुनिक जीवनी में किसी प्रसिद्ध व्यक्ति के बचपन, शिक्षा तथा रुचियों पर जानकारी पाने की उम्मीद करेंगे। इसके विपरीत सुसमाचार की पुस्तकें हमें यीशु के जीवन के अन्तिम तीन वर्षों के बारे में अधिक बताती हैं। अन्तिम सप्ताह पर, विशेषकर उसकी मृत्यु तथा पुनरुत्थान पर विशेष ध्यान दिया गया है यीशु के अन्तिम सप्ताह की घटनाओं पर अत्यधिक बल दिए जाने के कारण सुसमाचार के वृत्तांतों को कई बार ''लम्बे परिचय वाले दुख के विवरण'' कहा जाता है। उदाहरण के लिए इन घटनाओं में मत्ती के अठाइस अध्यायों के अन्तिम आठ, मरकुस के सोलह अध्यायों के छह, लूका के

चौबीस अध्यायों के अन्तिम 5-1/2 अध्याय तथा सुसमाचार के यूहन्ना के वृत्तांत का दूसरा पूरा भाग है (अध्याय 12-21)। यह स्पष्ट है कि लेखक यीशु की कहानी के सबसे महत्वपूर्ण भाग किन्हें मानते थे। सुसमाचार का केवल एक वृत्तांत, लूका बालक के रूप में यीशु के विषय में कुछ बताता है, और वह एक छोटी सी घटना है जब वह बारह वर्ष का था (लूका 2:41-52)। इसके अलावा यीशु के आरम्भिक जीवन (लगभग 2 वर्षों की उम्र से लगभग 30 वर्ष तक) का समय बिल्कुल खामोशी में बीता।

सुसमाचार के वृत्तांत हमारे लिए कई सवालों को अनसुलझा रहने देते हैं, पर हमारी जिज्ञासा को शांत करना उनका उद्देश्य नहीं है। उनका लक्ष्य हमें यीशु के विषय में सबसे महत्वपूर्ण सच्चाइयां बताना है, वह कौन था; उसने क्या किया; उसके जीवन, मृत्यु और पुनरुत्थान से क्या प्राप्त हुआ। सुसमाचार की पुस्तकों के बिना यीशु के विषय में हम जरा भी नहीं जान सकते थे।

क्या हम इन स्रोतों पर भरोसा कर सकते हैं?

सुसमाचार के लेखकों के सम्बन्ध में विश्वसनीयता का सवाल खड़ा होता है (टयुटोनियुस और टेसिटुस जैसे मूर्तिपूजक इतिहासकारों से बढ़कर) क्योंकि हम विलक्षण रूप में मसीही साहित्य की बात कर रहे हैं। क्या सुसमाचार की पुस्तकें विश्वास के योग्य हैं? क्या उन्हें यीशु पर स्टीक ऐतिहासिक जानकारी होने के रूप में भरोसा किया जा सकता है या वे भी अन्यों की तरह जो दावा करते हैं, केवल पूर्वाग्रह से भरे धार्मिक दस्तावेज़ हैं जिनका कोई ऐतिहासिक महत्व नहीं है? इस बड़े, जटिल प्रश्न का उत्तर प्रसिद्ध इतिहासकार ही देते हैं,[2] पर इस चर्चा में कुछ महत्वपूर्ण विचार दिए जाने आवश्यक हैं।

इतने सारे लोग सुसमाचार की पुस्तकों की विश्वसनीयता पर सवाल क्यों करते हैं? कई कारण दिए जा सकते हैं, परन्तु मुख्य कारण इस प्रकार हैं।

कुछ लोग इस तथ्य से परेशान होते हैं कि सुसमाचार की पुस्तकें मसीही लोगों द्वारा लिखी गईं। वे यह निष्कर्ष निकालते हैं कि यीशु के विषय में लिखते समय लेखक यथार्थवादी नहीं हो सकते। लग सकता है कि उनकी बात सही हो पर आइए इसे और बारीकी से देखते हैं। निश्चित रूप यह *सम्भव* है कि मत्ती, मरकुस, लूका और यूहन्ना संदेह न करने वाले पाठकों को एक ऐसी कहानी पर विश्वास करने के लिए यकीन दिलाने की कोशिश कर रहे थे, जिसे उन्होंने गढ़ा या तोड़ा-मरोड़ा था। परन्तु याद रखें कि हमें यह पूछना आवश्यक है कि सबसे अधिक *सम्भावित* क्या है न कि यह जो केवल *सम्भव* है। यह बहुत सम्भावित नहीं लगता कि सुसमाचार की पुस्तकें हमें धोखा देने के प्रयास में लिखी गई हों।

यदि वे उसका जिसे उन्होंने लिखा केवल आविष्कार ही कर रहे थे, तो यह आश्चर्यजनक है कि सुसमाचार के वृत्तांतों में ऐसे विचार दिए गए। (1) उदाहरण के लिए कुंआरी से जन्म की कहानी पर (जो केवल मत्ती 1 और लूका 1 में मिलती है) पर विचार करें। बेशक इसमें देवताओं के मानवीय स्त्रियों के साथ संग करने की मूर्तिपूजक मिथ्य कहानियों से कुछ स्पष्ट भिन्नताएं हैं, परन्तु ऊपर से यह भयानक रूप से उनके जैसे ही लगती है; और आश्चर्यकर्म के द्वारा ऐसे गर्भाधारण और जन्म की अवधारणा ही कइयों के लिए ठोकर का कारण है। मत्ती और मरकुस को यदि मालूम था कि यह गलत है तो उन्होंने इसे इसमें क्यों मिलाया? (2) यूहन्ना

बपतिस्मा देने वाले के द्वारा यीशु के बपतिस्मे की बात? यूहन्ना का बपतिस्मा ''पापों की क्षमा के लिए मन-फिराव का बपतिस्मा'' (मरकुस 1:4)। तौभी यीशु ने उससे बपतिस्मा लेने पर ज़ोर दिया (मत्ती 3:14, 15), चाहे नया नियम ज़ोर देकर कहता है कि यीशु निष्पाप था। (उदाहरण के लिए देखें, 2 कुरिन्थियों 5:21; इब्रानियों 4:15; 1 पतरस 2:22.) लेखक ऐसी कहानियां क्यों बनाएंगे जिनसे इतने कठिन सवाल खड़े हों कि आज भी विद्वानों और धर्मशास्त्रियों द्वारा उन पर बहस होती है? (3) उन्होंने चेलों के यह मानने में असफल रहने की परेशान करने वाली कहानियां क्यों दीं कि यीशु कौन था और उनके बीच में झगड़े होते थे? यदि सुसमाचार के लेखक इन परेशानी पैदा करने वाली बातों और दिक्कत देने में सक्षम बातों के प्रति इतने ईमानदार थे, तो क्या यह इस सम्भावना के लिए बहस नहीं है कि वे अन्य क्षेत्रों में भी सच ही बताएंगे?

कोई यह क्यों मान लेगा कि इन्हें मसीही लोगों द्वारा लिखा गया था इसलिए सुसमाचार के चारों वृत्तांत सच नहीं बता रहे होते? यह एक बेतुकी मान्यता है। यह तो ऐसे कहना है कि किसी ऐतिहासिक घटना के तथ्यों का पता लगाने के लिए, आपको किसी ऐसे व्यक्ति से बात करनी होगी जो उस घटना में शामिल न हो और जिसे उस विषय पर कोई वास्तविक रुचि न हो! यदि आप डी-डे पर ओमाहा बीच पर होने या सितम्बर 11, 2001, में वर्ड ट्रेड सेंटर की बात जानना चाहेंगे तो क्या आप यह मानेंगे कि आपको तथ्यों का पता केवल किसी ऐसे व्यक्ति से बात करके ही चल सकता है जो वहां *नहीं* था? क्या यह उन लोगों से जिन्होंने आंखों देखा हो या जिन्होंने प्रत्यक्षदर्शियों से बात की हो, सलाह लेना अधिक समझदारी नहीं होगा? सुसमाचार की पुस्तकों में यही तो बात है।

एक और कारण है कि कुछ लोग सुसमाचार की पुस्तकों के सही होने पर सवाल उठाते हैं वह यह है कि यीशु के जीवन की घटनाओं के बीच का समय और यह कि वे कब लिखी गईं। अधिकतर विद्वानों का मत है कि बहुत पहले उन्हें यीशु के समय के कोई चालीस से सत्तर वर्षों के बाद लिखा गया (70-100 ईस्वी, चाहे कुछ विद्वान इन तिथियों के तीस साल पहले होने पर बहस करते हैं)। संशयवादी लोग कहते हैं कि उस अंतराल के दौरान कहानी के व्यापक रूप में ''बढ़ना'' हुआ होगा, जो यीशु के ऐतिहासिक रूप में सच होने के बजाय उसे केवल मिथ्या बना देगा।

सुसमाचार की पुस्तकों के लिए एक मानक लागू किया जाता है, जो प्राचीनकाल के अन्य किसी लेखों पर लागू नहीं किया जाता। कोई जूलियस सीज़र तथा अन्य प्रसिद्ध लोगों के प्राचीन इतिहासों पर सवाल उठाता नहीं लगता, पर उनकी कहानियां बताने वाले दस्तावेज़ों में उन घटनाओं के बीच का अन्तर उतना ही है जितना सुसमाचार की पुस्तकों का। इसके अलावा हमारे पास एक ऐसा स्रोत है जो सुसमाचार की पुस्तकों से भी अधिक उनके निकट था, प्रेरित पौलुस के पत्र, जो सुसमाचार की अधिकतर बातों की पुष्टि करते हैं। पौलुस ने अपने पत्र पहली शताब्दी के चालीस के दशक के अन्त में[4] लिखने आरम्भ किए, सो उसके लेख सुसमाचार की प्राचीनतम पुस्तकों से लगभग बीस साल पुराने थे। उसने इस बात की पुष्टि की कि लोग यीशु के परमेश्वर होने और उसकी मृत्यु और उसके जी उठने में विश्वास रखते थे। यदि कहानी में मसाला लगाया गया था, तो यह चालीस से कम सालों में घटी। इसका अर्थ यह होगा कि ऐसे लोग अभी भी थे, जिन्होंने यीशु को देखा और सुना था। यदि पौलुस, मसीह, मरकुस, लूका और

यूहन्ना ने जो कुछ कहा वह गलत था, तो उन्हें उन लोगों को जो सच्चाई के चश्मदीद थे, यकीन दिलाना सबसे कठिन होना था।[5]

कुछ लोग यह कहकर, ''क्या सुसमाचार के लेखों में अपने अन्दर विसंगतियां नहीं हैं?'' सुसमाचार के वृत्तांतों की विश्वसनीयता पर सवाल उठाते हैं। जवाब इस पर निर्भर करता है कि ''विसंगति'' का अर्थ क्या लिया जाता है। बहुत बार ऐसा होता है कि सुसमाचार के दो वृत्तांतों में यीशु के शब्दों को अलग-अलग लिखा होता है, परन्तु यह केवल इस बात को दिखाता है कि लेखक आंखें मूंदकर शाब्दिक विवरण देने के लिए एक-दूसरे के शब्दों की नकल नहीं कर रहे। यदि चारों का हर विवरण दूसरे से सहमत होता तो। (क्या *इससे* संदेह नहीं पैदा होते?)

सुसमाचार के वृत्तांतों में उठाए गए कुछ ऐतिहासिक प्रश्न आसानी से समझना कठिन हैं। उदाहरण के लिए लूका 2:2 में कहा गया कि सीरिया में क्विरिनियुस के सीरिया के हाकिम होने के समय एक जनगणना के कारण यीशु का जन्म बैतलहम में हुआ (उसके माता-पिता के ग्रहनगर नासरत के बजाय)। परन्तु जोसेफस के अनुसार क्विरिनियुस बाद के समय में (6-9 ईस्वी) में हाकिम था और उसने उस समय जनगणना का आदेश दिया था।[6] लूका जैसे अति चौकस इतिहासकार के लिए इतनी बड़ी गड़बड़ करना अनोखी बात होती, जिस कारण कुछ लोग सुझाव देते हैं कि क्विरिनियुस पहले भी सीरिया का हाकिम था; परन्तु इसके लिए प्रमाण अधूरा है। ऐसी ''विसंगतियां'' (जिनमें पूरी तरह से मान्य व्याख्याएं हो सकती हैं, जो हमारी ऐतिहासिक जानकारी से कहीं आगे हैं) इसी प्रकार सुसमाचार के वृत्तांतों के इस संदेश को कि यीशु कौन है और पृथ्वी पर रहते समय उसने क्या किया किसी प्रकार प्रभावित नहीं करती। यह तथ्य कि लोग सुसमाचार के वृत्तांतों की विश्वसनीयता की आपत्तियों के रूप में सवाल खड़े करते हैं, दिखाता है कि इनके विरोध में करने वाली बातें अधिक नहीं हैं।

सुसमाचार के वृत्तांतों की विश्वसनीयता पर आपत्तियां मान्यताओं पर यानी निकट से देखने पर आधारित काम करती हैं और वे अनिश्चित और अवास्तविक हैं। एक मान्यता यह है कि आरम्भिक मसीही लोग यीशु के बारे में बनाई गई पूरी (अधिकतर) कहानी से परिचित थे, पर उन्होंने इसे किसी प्रकार मान लिया और फिर दूसरों को इसके सच होने का यकीन दिलाने की कोशिश की। एक वैकल्पिक मान्यता यह है कि उन्हें प्रेरितों तथा कलीसिया के अन्य अगुओं द्वारा धोखा दिया गया था। लोग यह क्यों मान लेते हैं कि वे या तो इतने भोले थे या इतने बेईमान? यह उससे मेल नहीं खाता जो हम उनके बारे में जानते हैं। उनकी नैतिकता तथा इस तथ्य के विषय में कि यूहन्ना को छोड़ सभी प्रेरित यह प्रचार करने के कारण मारे गए थे कि यीशु परमेश्वर का पुत्र है जिसे क्रूस पर दिया गया था और जो मुर्दों में से जी उठा था, क्लायनी के कथन को याद रखें। संदेहवादियों के अनुसार उन्हें मालूम था कि वे झूठ का प्रचार कर रहे हैं। *यह* कहां तक सम्भव है?

उन कारणों को देखने के लिए कि कुछ लोग सुसमाचार के चारों वृत्तांतों पर इतने संदेहवादी हैं, एक तथ्य को स्वीकार किया जाना आवश्यक है: कुछ लोगों में किसी भी अलौकिक या आश्चर्यकर्म की बात के विरोध में विचार होता है। उन्होंने पहले से ही निष्कर्ष निकाल लिया होता है कि ऐसा कुछ नहीं हो सकता; सो जब वे यीशु के परमेश्वर के ईश्वरीय पुत्र होने और आश्चर्यकर्म करने के बारे में पढ़ते हैं तो वे स्वयं ही मान लेते हैं कि यह ऐसा नहीं हो सकता

और वे वैकल्पिक व्याख्याएं ढूंढ़ने लगते हैं। उन्होंने विश्वास न करने का पहले से ठाना हुआ है।

हम शेष नये नियम से क्या सीख सकते हैं?

नये नियम में सुसमाचार के चार वृत्तांत यीशु के विषय में जानकारी प्राप्त करने में विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। परन्तु हमें इस तथ्य को नज़रअन्दाज़ नहीं करना चाहिए कि शेष नया नियम भी उसके बारे में जानकारी देता है।

विशेष रूप से पौलुस के पत्र महत्वपूर्ण हैं। नये नियम में तेरह पत्र हैं, जिन्हें पौलुस के माना जाता है। इन पत्रों के लिखे जाने का समय लगभग 49 ईस्वी से 65 ईस्वी तक का है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, सुसमाचार वृत्तांतों की सामान्य तिथि निर्धारण के आधार पर (आम तौर पर 50–100 ईस्वी), इसका अर्थ है कि पौलुस के सभी पत्र सुसमाचार के किसी भी वृत्तांत के लिखे जाने से पहले लिखे गए होंगे। नया नियम कालक्रम के अनुसार नहीं, बल्कि तर्कसंगत क्रम में लगाया गया है। सुसमाचार के वृत्तांतों को पहले इसलिए नहीं रखा गया कि वे नये नियम के सबसे पहले लिखे जाने वाले खण्ड थे, बल्कि इसलिए रखा गया है क्योंकि उन में पाई जाने वाली कहानी नये नियम के शेष दस्तावेज़ों में मानी जाती है।

उसके पत्र शिक्षा और ''समस्या का समाधान करने वाले'' दस्तावेज़ थे, परन्तु पौलुस ने यीशु की *कहानी* के बारे में अधिक नहीं बताया। वह यह मानकर चला कि उसके पाठक पहले से यह जानते हैं, परन्तु उसके लेखों में यह दिखाया गया है कि यीशु के अपने जीवन से बीस से तीस वर्षों के भीतर मसीही लोगों में आम तौर पर कितना ज्ञान था और क्या विश्वास किया जाता था।

पौलुस ने अपने पत्रों में यीशु के जीवन की घटनाओं के हवालों से या उसकी कही बातों के उदाहरणों से नहीं भरा पर ऐसा नहीं है कि वह उनके विषय में जानता न हो या खामोश रहा हो। उदाहरण के लिए पौलुस ने इस बात का उल्लेख किया कि यीशु अब्राहम के वंश में से आया (गलातियों 3:16) और वह दाऊद का ''पुत्र'' यानी (वंश) (रोमियों 1:3) अर्थात ''स्त्री से जन्मा'' था। उसने दिखाया कि यीशु यहूदी व्यवस्था के अधीन रहा (गलातियों 4:4) और यह कि वह सब प्रकार के लोगों का स्वागत करता था (रोमियों 15:5–7), दीनता और सेवा वाला जीवन बिताता था (फिलिप्पियों 2:7, 8)। पौलुस ने लिखा कि अन्य भाइयों के साथ-साथ यीशु का याकूब नामक एक भाई भी था (गलातियों 1:19; 1 कुरिन्थियों 9:5)। उसने बताया कि किस प्रकार यीशु को प्रताड़ित किया गया और अपमानित किया गया (रोमियों 15:3) और किस प्रकार उसने उस रात जब वह पकड़वाया गया था प्रभु भोज की स्थापना की (1 कुरिन्थियों 11:2, 23–25)। उसने आगे कहा कि यीशु पिलातुस के सामने पेश हुआ (1 तीमुथियुस 6:13); कि यहूदिया के यहूदियों ने उसकी मृत्यु में योगदान दिया (1 थिस्सलुनीकियों 2:14, 15); और उसे दफ़नाया गया पर तीसरे दिन वह मुर्दों में से जी उठा, और अपने पुनरुत्थान के बाद कई बार दिखाई दिया (1 कुरिन्थियों 15:4–8)। यह विवरण संयोगवश दिए गए हैं यानी पौलुस जान-बूझकर यीशु की कहानी को दोबारा बताने की कोशिश नहीं कर रहा। इसका अर्थ यह हुआ कि उसे उससे अधिक मालूम था जो वह लिख रहा था, परन्तु उसे और अधिक बताने की आवश्यकता नहीं लगी। इन सभी विवरणों की पुष्टि (बाद में) बिना किसी अतिश्योक्ति या तरोड़-मरोड़ कर सुसमाचार की पुस्तकों द्वारा की गई।

यीशु के जीवन के ज्ञान को दिखाने के अलावा पौलुस को स्पष्ट रूप से और कई बातों का पता था, यदि सभी का नहीं तो कम से कम यीशु की शिक्षाओं का तो अवश्य पता था। हमने पहले प्रभु अन्तिम भोज में यीशु के शब्दों के उसके हवाले की बात की है (1 कुरिन्थियों 11:23-25; देखें मत्ती 26:26-29)। इसके अलावा पौलुस तलाक और विवाह पर यीशु के विचारों को जानता था (1 कुरिन्थियों 7:10, 11; देखें मरकुस 10:2-12)। उसने उसकी शिक्षा का हवाला दिया कि मज़दूर अपनी मज़दूरी का हकदार है (1 कुरिन्थियों 9:14; देखें मत्ती 10:10) और यीशु के विचारों को दोहराया कि हर प्रकार का भोजन शुद्ध है (1 कुरिन्थियों 10:27; देखें मरकुस 7:18-20)। पौलुस ने कर देने पर अपनी शिक्षा का आधार इसी विषय पर यीशु की बात को बनाया (रोमियों 13:7; देखें लूका 20:25); उसने यीशु के अन्त में अपनी वापसी के अचानक होने के उसके रूपक से लिया, जैसे ''रात में चोर'' (1 थिस्सलुनीकियों 5:2-5; देखें मत्ती 24:36-44); और पहाड़ी उपदेश से उसने यीशु की कई नैतिक शिक्षाएं दोहराईं (रोमियों 12:9-13:10; देखें मत्ती 5:43-7:12)।

इसका अर्थ यह हुआ कि यह सुझाव देना कि पौलुस को यीशु के बारे में अधिक पता नहीं था यह मान लेना है कि किसी को पौलुस के बारे में अधिक ज्ञान नहीं था! ऊपर दिए गए पौलुस के लेखों के अधिकतर हवाले उन पत्रों में से लिए गए हैं जिनकी प्रामाणिकता पर किसी प्रकार का कोई विवाद नहीं है। पौलुस ने यीशु के विषय में हमारी जानकारी के कोष को बढ़ाया नहीं, क्योंकि जो कुछ उस ने कहा वह पहले ही सुसमाचार के वृत्तांतों में दोहराया गया है, परन्तु उसने उसकी पुष्टि की कि जो बाद के लेखों में कहा गया है, वह मसीही लोग पहले से जानते हैं।

कई बार लोग पूछते हैं ''पौलुस को यीशु के विषय में ज्ञान कैसे मिला?'' आखिर वह उन ''बारह'' में से एक नहीं था जो यीशु के साथ घूमते थे और जो यीशु के साथ रहते थे। (कम से कम हमारे पास उसके प्रभु के साथ रहने का कोई प्रमाण नहीं है, चाहे ऐसा प्रमाण ऐतिहासिक तौर पर असम्भव है, क्योंकि यीशु और पौलुस समकालीन थे।) पौलुस की जानकारी तीन सम्भावित स्रोतों से मिली। (1) गलातियों 1:18, 19 में पौलुस ने कहा कि उसका सम्पर्क उन लोगों से हुआ था, जो यीशु के चश्मदीद थे, विशेषकर पतरस के साथ और याकूब के साथ जो यीशु का भाई था। निश्चित रूप से ऐसे अवसर पर चर्चा के उनके मुख्य विषय वे बातें रही होंगी, जो यीशु ने कीं और कहीं। (2) सुसमाचार के वृत्तांतों से लिखे जाने से पहले यीशु की कहानियां और बातें ज़बानी (''मौखिक परम्परा'') लोगों में सुनाई जाती थीं। अधिक सम्भावना यही है कि हर नये चेले को इस परम्परा के बारे में उतना ही सिखाया जाता था जितना सिखाने वाले को मालूम होता था; पौलुस कोई अपवाद नहीं होगा। (3) पौलुस ने स्वयं सुसमाचार के अपने संदेश को किसी मानवीय माध्यम के द्वारा नहीं, बल्कि ईश्वरीय प्रकाशन से पाने का दावा किया (गलातियों 1:11, 12, 16; 1 कुरिन्थियों 11:23; 15:3)। इसका अर्थ यह नहीं है कि उसने सब कुछ इसी प्रकार जाना, न ही यह पीछे दी गई उसकी जानकारी के दो स्रोतों में से किसी को नज़रअन्दाज़ करता है। यह केवल यह सुझाव देता है कि वह अपने संदेश की मुख्य बात को स्वयं परमेश्वर की ओर से सीधे मिलने की बात करता है। यदि कोई ईश्वरीय प्रकाशन की सम्भावना को कम भी करता है तौभी पौलुस के पास उन सच्चाइयों को जानने का पर्याप्त अवसर था, जो उसने यीशु के बारे में बताईं।

सबसे पहले लिखने के कारण सुसमाचार के वृत्तांतों के लेखकों के अलावा यीशु की जानकारी के लिए नये नियम का स्रोत सबसे महत्वपूर्ण तो है पर नये नियम के अन्य लेखक भी यीशु के उतने ही महत्वपूर्ण गवाह थे। पतरस, यूहन्ना और याकूब सभी यीशु के सीधे सम्पर्क में थे। लूका द्वारा लिखित प्रेरितों के काम में यीशु द्वारा यानी कलीसिया द्वारा आरम्भ की गई लहर के लगभग पहले तीस सालों का वर्णन है। (यह किसी भी प्रकार से ऐतिहासिक होने के लिए गिना जाना आवश्यक है।) ये सभी लेख विलक्षण तो हैं ही, बल्कि वे उस मनुष्य की वास्तविकता की गवाही भी देते हैं जिसे यीशु नासरी कहा जाता है

अन्तिम बात

हमारे पास यही ऐतिहासिक तथ्य रह जाता है कि यीशु के विषय में हमारी जानकारी के मुख्य स्रोत नये नियम में पाए जाने वाले सुसमाचार के चार वृत्तांत हैं। यदि हम उन पर भरोसा नहीं कर सकते तो हम यीशु के बारे में बहुत कम जान पाते हैं। यदि वे भरोसे के योग्य हैं, जिसकी अधिक सम्भावना लगती है, तो हम यीशु के बारे में बहुत कुछ जान सकते हैं, बेशक उतना तो नहीं जितना हमें लगता हो कि हमें जानना चाहिए। अतिरिक्त स्रोत उपयोगी हैं पर अधिकतर इसलिए क्योंकि वे यह पुष्टि करते हैं कि यीशु इस संसार में रहा और सुसमाचार की पुस्तकों में पाई जाने वाली कहानी की आवश्यक रूप रेखा को पक्का करते हैं। बेशक शेष नये नियम में यीशु के बारे में हमारी जानकारी और नहीं बढ़ाई गई, पर इससे यह पता चलता है कि अन्य लेखक, जिनमें से कइयों ने सुसमाचार के वृत्तांतों के अलावा पहले लिखा था, उन्हीं बातों में विश्वास करते और उन्हीं की शिक्षा देते थे।

नये नियम में हमारे लिए चार गुणा रिकॉर्ड दिया गया है। यह सचमुच में बहुत विवश करने वाला रिकॉर्ड है। मेरी बात को अन्तिम मत मानें। स्वयं सुसमाचार के वृत्तांतों को पढ़ें!

टिप्पणियां

[1]ग्राहम एन. स्टैन्टन, *दि गॉस्पल्स एंड जीज़स* (न्यू यॉर्क: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1989), 60–61. [2]एफ. एफ. ब्रूस, *दि न्यू टैस्टामेंट डॉक्यूमेंट: आर दे रिलायबल?* छठा संस्क. (ग्रैड रैपिड्स, मिशिगन: विलियम बी. ईर्डमैंस पब्लिशिंग कं., 1981) एंड पाल बर्नेट, *इज़ द न्यू टैस्टामेंट रिलायबल?* संशो. संस्क. (डाउनर्स ग्रोव, इलिनोइस: इंटरवर्सिटी, 2003) में और जानकारी दी गई है। [3]नये नियम के ब्रिटिश विद्वान जे. डी. जी. डन ने हाल ही में तर्क दिया कि हमें याद रखना चाहिए कि यीशु का संदेश मूल में दस्तावेज़ों में नहीं, बल्कि मौखिक रूप में था, और हमें यह नहीं मानना चाहिए कि यीशु के विषय में मौखिक परम्परा (जैसा कि कहा जाता है) अपने आप में दस्तावेजों से कम विश्वसनीय है। इस बात को समझना कम से कम घटनाओं तथा उनके लिखे जाने के बीच की दूरी को मिटा ही देता है, क्योंकि इसे इस प्रकार से समझा जाना चाहिए कि लिखे गए दस्तावेज़ मौखिक परम्परा पर ही निर्भर थे। जे. डी. जी. डन, *ए न्यू प्रस्पेक्टिव ऑन जीज़स: व्हट द क्वेस्ट फ़ॉर द हिस्टोरिकल जीज़स मिस्ड* (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: बेकर अकेडमिक, 2005), 35–56, 79–125. [4]कुछ विद्वान पौलुस के लेखों को 50 के दशक का मानते हैं। [5]सुसमाचार के वृत्तांतों की विश्वसनीयता पर गैरी आर. हेबर्म्स "वाय आई बिलीव द न्यू टैस्टामेंट इज़ हिस्टोरिकली रिलायबल," एन. एल. गेस्लर एंड पी. के. हॉफ़मैन, सम्पा., *वाय आई एम ए क्रिश्चियन: लीडिंग थिंकर्स एक्सप्लेन वाय दे बिलीव,* संशो. व विस्तृत संस्क. (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: बेकर बुक्स, 2006), 161–74 में। [6]जोसेफस एंटिक्विटीस 18.1.